International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 21-06-2019; Accepted: 23-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 64-68

जनसरोकार के कवि नागार्जुन

डॉ. वंदना बिंदलेश
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

नागार्जुन की लेखन सामग्री अत्यंत विपुल है। अपने रचना-संसार में नागार्जुन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आधार बनाकर रचना की है। ऐसा लगता है कि इन्होंने जनमानस को सूक्ष्मता से देखा है। जनसाधारण के जीवन के दुख, उत्तेजना, घृणा, क्रोध,कमजोरियाँ, शोषण इत्यादि के साथ ही उनकी खुशियाँ, प्रेम, राग, सौन्दर्य, वात्सल्य को भी इन्होंने आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त किसान जीवन से भी ये बराबर जुड़े रहे हैं। किसानों के जीवन से जुड़ी कविताएं अप्रतिम हैं। उनका सौन्दर्य और सरलता मन मोह लेते हैं। राजनीतिक कविताएं विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों से जुड़ी हुई हैं और पाठक के मस्तिष्क को झकझोर देती हैं। इनकी कविताओं विषय वैविध्य प्रचुरता से दिखाई देता है। नागार्जुन हिंदी के साथ-साथ संस्कृत, बांग्ला और मैथिली भाषा के भी विद्वान थे इसलिए भाषागत वैविध्य भी इनके लेखन में उभरकर आता है। मुक्तछंद के साथ ही छंदबद्ध कविता करने के कारण शिल्प की दृष्टि से भी कविताएं विशिष्ट व सुंदर बन जाती हैं। विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करने व उससे मिलने वाले अनेक अनुभवों की वजह से रचना के मूड व शिल्प में विविधता दिखाई देती है। कहा जा सकता है कि आजादी के बाद का जीवन, चाहे वह शहरी हो अथवा ग्रामीण, राजनीतिक हो या सामाजिक नागार्जुन के लेखन में अपने सम्पूर्ण रूप में उभरकर पाठक को अचंभित कर देता हैं।

मूल शब्द : नागार्जुन, रचना-संसार, जीवन, रचना, अचंभित

प्रस्तावना

नागार्जुन सरीखे रचनाकार की रचनाधर्मिता अपने परिवेश से फलीभूत होती है। हमारे परिवेश में बिखरे अनेकानेक विषयों से नागार्जुन अपने रचनाकार व्यक्तित्व को पोषित करते चलते हैं। इन्हीं सामाजिक अनुभवों को मुक्तिबोध ने कला का तीसरा क्षण कहा है। मुक्तिबोध का कथन है, "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैन्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।"[1]वे आगे कहते हैं, "फैन्टेसी को शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है – वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।"[2] नागार्जुन का रचनाकार मन भी किसी विशेष परिस्थिति से सघन संवेदना स्थापित कर जुड़ जाता है और उसे रचनाकर्म का माध्यम बना लेता है। नागार्जुन परिवेश की हर छोटी-बड़ी परिस्थिति से गहरे जुड़ जाते हैं। उन्हें जन-साधारण की छोटी-बड़ी हर अनुभूति, उनके विचार, उनकी समस्याएं, उनके सुख-दुख सब अपने लगते हैं। जनसरोकार के मानवीय बिम्ब उनकी कविता की विशेषता हैं -

"नहीं कभी क्या मैं थकता हूँ?
अहोरात्र क्या नीलगगन में उड़ सकता हूँ?
मेरे चितकबरे पंखों की भास्वर छाया
क्या न कभी स्तंभित होती है
हरे धान की स्निग्ध छटा पर?
उड़द मूंग की निविड़ जटा पर?
आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ...........।"[3]

साधारण जन-जीवन से जुड़े एक श्रमिक वर्ग के बालक का एक अन्य बिम्ब दृष्टव्य है —

"आँत की मरोड़ छुड़ा न पाई बरगद की फलियाँ
खड़ा है नई पौध पीपल के नीचे खाद की खोज में
देख रहा ऊपर
कि फलियाँ गिरेंगी
पेट भरेगा
और फिर जाकर
सो रहेगा, चुपचाप झोपड़े के अंदर
भूखी माँ के पेट से सटकर।"[4]

कहने का तात्पर्य है कि इनके यहाँ व्यापक संवेदना के संदर्भ बहुत गहरे हैं जो इनकी कालजयिता और अनुभव की उदात्तता के भी द्योतक हैं। दरअसल ''पिछले पचास सालों में हिंदुस्तान की जो राजनीति रही, समाज की, गरीब आदमी की जो हालत रही, जितनी तरह के अपघात आदमी के साथ हुए और दुनिया के नक्शे पर भी जो ऊधम मचाई गई - वे सब या उसमें से अधिकांश नागार्जुन की कविताओं या उपन्यासों में एक चित्रशाला की तरह देखी जा सकती हैं_ चित्रें के मुर्दाखाने की तरह नहीं, साक्षात्कार की चेतना से सम्पन्न दस्तावेजों की तरह। इनमें नागार्जुन की तकलीफ, घृणा, क्रोध, उत्तेजना और बदलाव की तीव्र आकांक्षा अग्नि पिंड की तरह दहक रही है।''[5]

मानव और मानवेतर जीवन के परस्पर जुड़ाव की जैसी अभिव्यक्ति नागार्जुन में है वह इनकी रचनाओं को बार-बार संदर्भवान बनाती है। ''नागार्जुन इसीलिए नागार्जुन हैं कि वे जनता के विवेक का ही नहीं, उसके आवेशों का भी उसकी खूबियों का ही नहीं, कमजोरियों का भी शाश्वत का ही नहीं, तत्काल का भी शोषण का ही नहीं, राग और सौंदर्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।''[6] यानी ये सही मायने में करुणाद्रवित मनुष्य थे। प्रगतिशील तथा लोक आकांक्षा के सहचर थे। इनका अनुभव संसार व्यापक था। ''वह (बाबा) अपने अनुभव से गुजरते हुए देखते थे कि कहाँ सच है? और कहाँ जनहित है।''[7] इनकी रचनाशीलता के विस्तृत क्षेत्र के विषय में एक साक्षात्कार में प्रो. नित्यानंद तिवारी कहते हैं - ''नागार्जुन के संदर्भ में भी मुझे लगता है कि सामग्री बहुत विपुल है। जीवन बहुत बड़ा है और लेखक बहुत छोटा है। और इसमें मुझे एक साहित्यिक तर्क दिखाई देता है कि कम से कम इतनी सामग्री जब आती है तो विविधता एक कला-प्रत्यय के रूप में हमारे सामने आती है। इस रचनावली से उस विविधता का भले ही वह समग्र न हो, पूरा न आ पाया हो, उसका असर पड़ेगा। चार हजार पृष्ठों तक यायावरी वृत्त के नागार्जुन, बौद्ध भिक्षु नागार्जुन, किसान आंदोलन और राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने वाले नागार्जुन और लगभग सारा जीवन

सकर्मक, संघर्षात्मक, लेकिन कहीं भी एक जगह टिक कर न रहने की आदत। न स्वभाव, न सुविधा और फिर भी इतना लेखन, यह एक आश्चर्यजनक चीज मुझे लगती है।''[8] नागार्जुन की एक जगह टिक कर न रहने की आदत के कारण उनके लेखन में भी विविधता के अनेक आयाम उभरते है।

नागार्जुन के घुमक्कड़पन के विषय में डॉ. अजय तिवारी लिखते हैं- ''जिस तरह घुमक्कड़ी नागार्जुन को सहजात संस्कार के रूप में मिली, उसी तरह अभाव और आलोचनात्मक विवेक भी उन्हें सहज संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। अंतर इतना था कि घुमक्कड़ी पिता से मिली और आलोचनात्मक विवेक अभावग्रस्त जीवन और पिता की मानवीय कमजोरियों से उत्पन्न विषम पारिवारिक स्थिति के दबाव से।''[9] इसी संस्कार के कारण ''नागार्जुन के काव्य के आस्वाद में विविधता है_ उनके काव्य की भाषा में भी विविधता है। नागार्जुन के जीवन के अनुभवों में विविधता है, काव्य के आस्वाद और भाषा की विविधता का अनुभव वैविध्य से घनिष्ठ संबंध है।''[10] उनके निजी जीवन को प्रकाशित करती एक कविता के कुछ अंश देखिए--

''घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!
कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए न समाज?
कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज?
चाहिए किसको नहीं सहयोग?
चाहिए किसको नहीं सहवास?
कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराए यह उच्छवास?
हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण---------------''[11]

उनके घुमक्कड़ स्वभाव और उससे उपजी पीड़ा का परिचय एक अन्य कविता से मिलता है--

''तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
क्या हुआ यदि हो सके परिचित न पहली बार?
यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज-------------------
धन्य तुम, माँ भी तुम्हारी धन्य!
चिर प्रवासी मैं इतर, मैं अन्य!
इस अतिथि से प्रिय तुम्हारा क्या रहा सम्पर्क
उँगलियाँ माँ की कराती रही हैं मधुपर्क
देखते तुम इधर कनखी मार
और होतीं जबकि आँखें चार
तब तुम्हारी दंतुरित मुस्कान
मुझे लगती बड़ी ही छविमान''[12]

इस कविता के संदर्भ में प्रो.निर्मला जैन लिखती हैं - '' ' दंतुरित मुस्कान' की छविमानता कवि को पहले ही संजीवनी-सी लगती रही और 'धूलि धूसरगात' तालाब को छोड़कर 'झोपड़ी में खिलते जलजात' से। यह झोपड़ी मेरी है। प्रकृति का सौंदर्य प्रकृत ही नहीं सहज और आत्मीय हो गया है। ये जलजात समाज के किस वर्ग से ताल्लुक रखते हैं, स्पष्ट करने की जरूरत नहीं।''[13] नागार्जुन की कविता के विषय चयन पर वे लिखती हैं, ''विषयों के चयन में भी कवि नागार्जुन की दृष्टि का वैशिष्ट्य उन्हें अपने आगे-पीछे के तमाम कवियों से अलग करता है। उनकी दुनिया बहुत व्यापक है। उसमें सागर है, ऋतुएँ हैं, जंगल और नगर-उपनगर हैं, कस्बे हैं, गाँव हैं और इन सबके बीच फैला-पसरा अनंत जीवन है- मानवीय और प्राकृतिक। मानव जीवन के सब रंग हैं उनके काव्य में। सभी स्तरों, पेशों, आयु वर्गों, दलों, आर्थिक वर्गों के लोग ही लोग हैं। उनकी यायावरी प्रवृति एकदम मेल खाती है, इस वैविध्य से। जीवन को उनके नाना रंगों में देखना, उससे लगातार मुठभेड़ करना और फिर उसे कविता में कैद कर लेना- प्रकृति के सहज सृजन व्यापार की तरह। कवि कर्म नागार्जुन के लिए फलीभूत होना है।''[14] इस पूरी प्रक्रिया में नागार्जुन जीवन के सहज, अनगढ़ रूपों में सौंदर्य की खोज करते हैं और स्वयं भी उस सौंदर्य पर चकित और मुग्ध हो जाते हैं।

दो टूक, खरी, निर्मम और साथ ही आक्रामक तेवर उनकी भाषा का आधार है। 'हमने तो रगड़ा है' कविता की भाषा पर टिप्पणी करते हुए विजय बहादुर सिंह ने लिखा है, ''इन पंक्तियों में नागार्जुन ने कवि के भाषाचार और भावाचार की उन तमाम मर्यादाओं को गिना दिया है जिनकी ज़रूरत असाधारण ऐतिहासिक परिस्थितियों में पड़ती है। दोस्त है, दुश्मन है, खास है, कॉमन है कहकर कवि और लेखक से यहाँ तक कह डाला है कि विचारधारा और उसकी राजनीति भी लोकविरोधी और पापाचारपूर्ण हो तो उसे भी मीजने और धुुनकने में परहेज नहीं करना चाहिए। यही भारत की कवि परंपरा है।''[15] प्रो. विजय बहादुर सिंह भारत की कवि परंपरा के विषय में आगे लिखते हैं, ''जो लोग इस परंपरा से अनभिज्ञ हैं, भारत का जीवन उन्हें अर्थशून्य या अर्थ-निःशेष लगता है, जिनकी मानसिक बनावट कहीं से भी देशी नहीं रह गई है, जिनके काव्य-संस्कार साम्राज्यवादी अथवा अतार्किक ढंग से ग्लोबवादी हैं, जो चुनिंदा विचारों के गमलों में किन्हीं पालतू घरेलू पौधों की तरह पल-पुस कर लहरा रहे हैं, जिन्होंने विशाल भारतीय जीवन के कुम्भीपाकी यथार्थ का साक्षात्कार नहीं किया है, काव्य और कलाएँ जिनके लिए अभिजात सैद्धांतिक निर्मितियाँ हैं, या फिर सांस्कृतिक सत्ता-संस्थान, वैसों को नागार्जुन का यह काव्य-संदेश शायद ही पल्ले पड़े, पल्ले पड़े भी तो बकवास जान पड़े। या फिर ऐसा खतरनाक और असुविधाजनक कि प्रतिभा की रूह तक काँप उठे।''[16]

एक कविता यह भी देखिए, इसमें कवि सम्पन्न वर्ग पर व्यंग्य करता है। इसी को इंगित करते हुए सुभाष क्षीरसागर लिखते हैं, ''नागार्जुन जैसा सार्थक और तीक्ष्ण व्यंग्य बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। सामाजिक प्रश्न हो या आर्थिक समस्या, कवि ने यथास्थितियों का आकलन करते हुए बड़े सजग ढंग से विनोद और व्यंग्य के माध्यम से उसे सुलझाने का प्रयास किया है। आर्थिक स्थिति आज जितनी शोचनीय है उतनी पहले कभी नहीं थी। इसी संदर्भ में देश की आर्थिक स्थिति दिन पर दिन कितनी भयानक होती जा रही है तथा गरीब और गरीब तथा धनिक और धनिक होते जा रहे हैं। इसका अत्यन्त वास्तववादी चित्रण कवि ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मन करता है' में किया है।''[17]

''मन करता हैः
नंगा होकर कुछ घण्टों तक सागर-तट पर मैं खड़ा रहूँ
यों भी क्या कपड़ा मिलता है?
धनपतियों की ऐसी लीला!''[18]

प्रस्तुत कविता में अभावग्रस्त मनुष्य की पीड़ा और विवशता स्पष्ट दिखाई देती है। पूंजीपति वर्ग के पास आवश्यकता से अधिक धन का संचय हो गया है और निम्नवर्ग के पास जीवन की आधारभूत जरूरतें भी पूरी करने के लिए संसाधन नहीं हैं।

नागार्जुन के काव्य का अभिव्यक्ति फलक बहुत व्यापक है। ''नागार्जुन ने अपने कवि जीवन के लगभग पचास वर्षों में हजार के आसपास कविताएँ लिखी हैं। एक-एक कतरे को, एक-एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत, इतना जन-संकुल है कि किसी एक बिंब या सूत्र में उनके काव्य-लोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। ये हजार-हजार बाँहों वाली कविताएँ हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती, हजार वस्तुओं को अपनी मुट्ठियों में थामे। इसीलिए नागार्जुन को समग्र रूप में पढ़ना ही श्रेयस्कर है। एक कविता या उनका एक संग्रह उनके पूरे संसार को व्यक्त नहीं करता।''[19] नागार्जुन की कविता की विस्तृत भूमि के संदर्भ में अरुण कमल आगे लिखते हैं- ''मिथिला के रुचिर भू-भाग से लेकर मुलुंड के अति सुदूर प्रदेश तक फैली हुई काव्य-भूमि, बिहार के सामंती उत्पीड़न से लेकर अमरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण-शृंखला, भूमिहीन मजदूरी के दुर्दम संघर्ष से लेकर जूलियन राजनबर्ग की महान् संघर्ष-गाथा और नितांत व्यक्तिगत जीवन-प्रसंगों से प्राप्त सुख-दुख से लेकर बाकी सारे जगत के सुख-दुख-

- मोतिया नेवले और मधुमती गाय तक के यह चौहद्दी है नागार्जुन के काव्य-महादेश की।''[20] इस जीवन संधान में उनके घुमक्कड़पन से और अधिक निखार आता है। दरअसल ''उनकी घुमक्कड़ी का जो लाभ उनके कवि को मिला उसे हम उनकी कविता में सहज ही देखते हैं। भारत में पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्खिन सब तरफ के जीवन और सब तरफ की प्रकृति से नागार्जुन का प्रत्यक्ष परिचय है। जीवन की विपुल अनुभव राशि किसी कवि की चेतना को किस रूप में ढालती है, नागार्जुन की कविताएँ इसका अकाट्य उदाहरण हैं। जीवन के अनुभव और रचनात्मक साहित्य में जितना प्रत्यक्ष संबंध नागार्जुन के यहाँ देखने को मिलता है उतना विभिन्न कारणों से उनके समकालीन या बाद के अधिकांश कवियों में नहीं मिलता।''[21] नागार्जुन सामाजिक विषमताओं में जनकवि की भूमिका पर भी विचार करते हैं -

''मैं भी तो पहले देखा करता था सपने
साथी, अब तो रंग-ढंग ही बदल गए हैं
समझ गया हूँ
जीवन में इस धरा-धाम का क्या महत्त्व है
कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा
आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर
कैसे जनकवि धान रोपता
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अमलों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी-हरी लाठी लेकर----
सब समझ गया हूँ!''[22]

नागार्जुन सही अर्थ में एक आधुनिक कवि हैं। आधुनिक भारत के निर्माण के लिए देश को साम्राज्यवाद के चंगुल से आजाद करना और जनता को पूँजीवादी सामंती शोषण से मुक्त करना अनिवार्य है। यह देश की राजनीतिक आधुनिकता है। नागार्जुन की कविताओं में राजनीति की गूँज व्याप्त है, इसलिए राजनीतिक दृष्टि से देखने पर वे आधुनिक भारत के एक सशक्त कवि के रूप में प्रकट होते हैं। सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से देखने पर भी उनकी आधुनिकता के तत्त्व में किसी भी तरह घुटन या कुंठा नहीं है। उनकी आधुनिकता जीवन-यथार्थ से उत्पन्न हुई है। आज के भारत का सांस्कृतिक संकट मनुष्य के अस्तित्व का संकट नहीं है, वह पूँजीवादी व्यवस्था का संकट है। मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण से उत्पन्न संकट है। समाज के इस अन्तर्विरोध को दूर करना नागार्जुन की आधुनिकता की मुख्य विशेषता है। उनका संपूर्ण काव्य इन निष्कर्षों को प्रमाणित करता है।''[23]

संवेदनात्मक स्तर पर तो नागार्जुन के संस्कार गहन हैं हीं, किंतु साथ ही भाषाई स्तर पर भी विशिष्टता दिखाई देती है। नागार्जुन ने मार्क्सवादियों के समान ही कुछ प्रतीकों को परंपरागत रूप में अपनाया है जैसे 'लाल सवेरा' आदि। लक्ष्मण श्रीरंग राऊत लिखते हैं, '' नागार्जुन जी ने निराला जी जैसे ही विविध प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करके समसामयिक नेताओं, अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों आदि पर करारे व्यंग्य किए हैं। इन प्रतीकों में अर्थ-वहन करने की अपूर्व क्षमता है, भाव-प्रेषणीयता का विलक्षण गुण है। जैसे क्रांति के रूप में 'लाल-सवेरा' अन्य कवियों की भांति नागार्जुन ने भी अपनाया है। वस्तुतः यह प्रतीक मार्क्सवादियों द्वारा बिलकुल रूढ़ बना दिया गया है।''[24] इनकी अनेक रचनाओं में ऐसे रूढ़ प्रतीकों के दर्शन होते हैं। ' होशियार, कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आने में, लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में!' कविता में भी इसी प्रकार की प्रतीक पद्धति दिखाई देती है। ''कवि नागार्जुन ने भिन्न-भिन्न प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी भाषा को अधिक सम्पन्न बनाया है। कवि ने जितने भी और जहाँ भी प्रतीकों का प्रयोग किया है, उन प्रतीकों में अर्थवहन करने की अद्भुत क्षमता है।''[25] अपने प्रतीकों से नागार्जुन ने कविता को नई धार दी है।

नागार्जुन की इस रचनात्मकता में उनके संवेदनात्मक अनुभव जितने गहन हैं भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से भी उतनी ही विविधता दिखाई देती है। ''नागार्जुन के हजार ढंग हैं बात करने के। जितने-मुँह, उतनी बोली। कभी तो वे निपट पारंपरिक छंद कहेंगे, तो कभी शुद्ध 'गद्य कविता' लिखेंगे। छंदों के अनेक प्रकार हैं। एक ही छंद की कई लयें हैं। एक ही कविता में रह-रह कर छंद बदल सकता है। लय बदल सकती है। वे खालिस गद्य पर उतर सकते हैं। वह सब कुछ हो सकता है, जिसका अनुमान भी आपने न किया था''[26] असल में ''भाषा पर उनका जबर्दस्त अधिकार है और वे एक नहीं अपितु अनेक भाषाओं के जानकार हैं। और अनेक भाषाओं में उन्होंने काव्य सृजन किया है।....नागार्जुन संस्कृत भाषा के पंडित थे। आरंभ में उन्होंने संस्कृत एवं मैथिली भाषा में ही काव्य सृजन किया था। इसीलिए उनके काव्य में कई स्थलों पर उनका संस्कृत ज्ञान तत्सम शब्दों की शब्दावली में दिखाई देता है। यह सच है कि तत्सम शब्दावली का प्रयोग कवि ने बहुत कम कविताओं में किया है। पर जहाँ भी किया गया है, वह कविता को सार्थक बनाने के लिए ही। उनकी 'जनवंदना', 'काली सप्तमती का चाँद', 'शरद पूर्णिमा', 'कालीदास के प्रति', 'बादलों को घिरते देखा' आदि कविताओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है।''[27] उनकी कविता 'जनवंदना' में तत्सम शब्दों का प्रयोग विपुल मात्र में हुआ है। एक उदाहरण देखिए-

''तुम मानवता के दूषित-गलित अवयवों पर/ प्रलयांत विघ्न बन बरस रहे/ हो रहा तुम्हारे लोहित नील स्फुलिंगों से/ त्रिभुवन का तम तोम हरण/ हे कोटि शीर्ष? हे कोटि बाहु, हे कोटि चरण।''[28]

नागार्जुन के रचनाकर्म के विषय में प्रो.नित्यानंद तिवारी कहते हैं, ''नागार्जुन जी ने बंगला में, संस्कृत में, हिंदी में, मैथिली में लिखा। और इससे फिर मैं रिड्यूस करना चाहता हूँ एक चीज कि भाषा और बोली का गहरा संबंध समाज और जीवन, किसी समाज में रहने वाले लोगों की जीवन शैली और संस्कृति से होता है तो इतनी भाषाओं में लिखने के कारण एक अंतरसांस्कृतिक, अंतर्सामाजिक बोध और अनुभव उत्पन्न हो सकता है और इस दृष्टि से नागार्जुन जी की बंगला, मैथिली, हिंदी और संस्कृत की कविताओं का अध्ययन नए सिरे से अगर किया जाए तो एक ऐसा मिला-जुला अनुभव हमें दिखाई पड़ेगा जो भाषाओं के माध्यम से मिले-जुले समाज का अनुभव हो और साहित्य का।''[29]

इनकी मैथिली भाषा की एक कविता देखिए--

''क्षार-अम्ल
विगलनकारी, दाहक
रेचक,उर्वरक--------
रिक्शाबलाक पीठ दिशुका फाटल तार-तार बनियाइन
पसेनाक अधिकाँश गुण-धर्मकेँ
कए रहल अछि प्रमाणित
मोन होइए हमरा
विज्ञान क कोनो छात्रसँ जा कँए पुछिअइन-
बेशी सँ बेशी की सभ होइत छइक
पसेनाक गुण-धर्म?
रिक्शाबलाक पीठक चाम
आओर कते शुष्क-श्याम हेतइ?
स्नायुतंतुक ऊर्जा आओर बरकतइ?
आओर कते--------
क्षार-अम्ल, दाहक विगलनकारी------''[30]

इस भाषाई वैविध्य के कारण ही नागार्जुन में मिली-जुली संस्कृति और एकमेक हुए समाज के दर्शन होते हैं। डॉ- -नित्यानंद तिवारी भी नागार्जुन में इसी भाषाई वैविध्य को देखते हैं। गिरिधर राठी बाबा नागार्जुन की कविताओं के संदर्भ में कहते हैं - ''कविता में तो खासतौर से आप देखेंगे कि यही प्रयोगशाला उनमें है कि पुरातन छंदों से लेकर संस्कृत के, बांग्ला के, मैथिली के छंद और दूसरे तमाम तरह के उपकरण हो सकते हैं। काव्यों में उनका उपयोग करते हुए उन्होंने कविता की है और छंद मुक्त और सब तरह के बंधनों से मुक्त कविता भी की। यह एक अनोखी प्रयोगशीलता है जो हमको निराला में मिलती है और फिर नागार्जुन में।''[31]

एक उदाहरण देखिए--

''फैल गयी हिंसा की लीला
गंगा दूषित, जल है पीला
काँप रहा मजनू का टीला
घोंट-घाँट है, घटा-घटक है
घटकवाद है, उठा-पटक है-------
घाव घाव है, दवा नहीं है
घुटन घुटन है, हवा नहीं है
चूल्हा है, पर तवा नहीं है
राशन सीताराम सटक है

घटकवाद है, उठा-पटक है''[32] ''नागार्जुन को पढ़ने का अर्थ है हिंदी भाषा के वास्तविक जगत में लौटना, हिंदी के निजी स्वरूप और संस्कारों से परिचित होना। भाषा के इतने रूप, बोलियों के इतने 'मिक्स्चर' उनकी कविताओं में मिलते हैं कि यदि उनके काव्य के अन्य प्रसगों को छोड़ भी दें, तो सिर्फ अपनी भाषा के लिए वे हमेशा-हमेशा के लिए महत्त्वपूर्ण बने रहेंगे। शब्दों को वे इस तरह फेंटते हैं, जैसे ताश के पत्ते। फेंटकर कहीं से काट लिया। उनकी अत्यन्त समसामयिक, क्षणभंगुर सी लगने वाली कविताओं में भी शब्दों का अपना मजा है, रस है।"[33]
नागार्जुन की भाषागत वैशिष्ट्य की कविता का एक अंश देखिए--

''युग की अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन-घटा सी गहराई
प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई
तिकड़म अलग रही मुस्काती, ओह, तुम्हारे पास न आई
फ़िल्म-जगत की जटिल विषमता आखिर तुमको रास न आई
ओ जन-जन के सजग चितेरे, जब-जब याद तुम्हारी आती
आँखें हो उठती हैं गीली, फटने-सी लगती है छाती''[34]

दरअसल इन्होंने इतने छंद, इतने ढंग, इतने काव्यरूप, इतनी शैलियों (प्रमुख रूप से स्वगत में मुक्त बातचीत की शैली) का इस्तेमाल किया है कि पाठक या श्रोता आश्चर्यचकित रह जाता है। देसी बोली के ठेठ शब्दों के साथ-साथ संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली का प्रयोग भी हैरान करने वाला है। एक उदाहरण देखिए--

''यहीं करें आप यथारुचि यथाशक्ति शव-साधन
कुत्ते और गीध करेंगे आपका आराधन
मिलेंगे यहाँ आपको शुद्ध निर्दोष मुर्दे
ताज़ा है कलेजा, अविकृत हैं गुर्दे
आएँ आप महामहिम, आएँ
इसी दग्ध भूमि पर अपना आसन जमाएँ।''[35]

प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षर होने के बावजूद नागार्जुन दूसरी विचारधाराओं का भी समान आदर करते हैं। ''कई बार वे उन व्यक्तित्वों और कृतियों की प्रशंसा और आदर करते हैं जो प्रगतिशीलता की सूची से खारिज हैं, लेकिन जिन्होंने जीवन के ऊँचे मानक कायम किए हैं और कला, सौंदर्य, अध्यात्म तथा विचारों को समृद्धि दी है। वरना मेघदूत, गीत-गोविंद, विद्यापति, गाँधी, महावीर, गौतम बुद्ध आदि उनके काव्य की सकारात्मक विषयवस्तु क्यों होते?''[36] इसका तात्पर्य यही है कि नागार्जुन की कविता ने जहाँ छंदबद्धता व गीत की परम्परा को आगे बढ़ाया वहीं वह जनसाधारण से सीधे जुड़कर अभिव्यक्त हुई। ''19 मई 1983 को अजयसिंह के साथ बातचीत में नागार्जुन जनसंघर्षों से अपनी कविता को जोड़ते हुए कहते हैं--'मैं इन जनसंघर्षों व संगठनों से जुड़ना व उन्हें जानना चाहता हूँ, क्योंकि मेरी कविता के लिए-- बेहतर कविता के लिए, यह बहुत जरूरी है। मेरी जितनी भी अच्छी व चर्चित कविताएँ हैं--जिनकी वजह से मैं आज कुछ हूँ-- वे सब जनसंघर्षों से जुड़ी कविताएँ हैं।''[37] युवालेखन के बारे में नागार्जुन की व्यक्तिगत धारणा क्या है? पूछे जाने पर वह कहते हैं-- ''आज का वही प्रतिभाशाली युवक मुझे आकर्षित करता है, जिसकी रचना में मौजूदा संघर्ष मुखर रहता है। नितांत व्यक्तिगत स्तर पर अपनी परिसीमित वेदनाओं की गिट्टियाँ फोड़ने वाले मेरी निगाहों में बड़े ही दयनीय जीव जँचते हैं। अपनी ही घुटन को, कुंठा को, सन्त्रस को लेकर कुढ़ने-बिसुढ़ने वाले मुझे कभी नहीं अच्छे लगे। व्यथा और उल्लास का साधारणीकरण मेरी दृष्टि में बहुत बड़ा गुण है रचनाधर्मिता का।''[38]
जगन्नाथ पंडित नागार्जुन की रचनाओं के बारे में लिखते हैं, ''उनकी कविताओं को पढ़ने के बाद उनके उपन्यासों को न पढ़ने पर बहुत कुछ छूट जाता हो, ऐसा नहीं लगता क्योंकि दृष्टिकोण में उनका उपन्यासकार रूप उनके कवि रूप से पृथक नहीं है। दोनों विधाओं में वे व्यवस्थाविरोधी रचनाकार हैं। इसके बावजूद उनके उपन्यास और कविता की अन्तर्वस्तु में एक बुनियादी फर्क है। व्यंग्य और साम्राज्यवाद-विरोध का जितना प्रखर स्वर उनकी कविताओं में है, उतना उपन्यासों में नहीं और वर्ग संघर्ष तथा जनान्दोलनों का जो प्रत्यक्ष और मुखर रूप उनके उपन्यासों में है, वह कविताओं में नहीं, यद्यपि दोनों स्वर दोनों में मौजूद हैं।''[39]
नागार्जुन की रचनाधर्मिता का संबंध, वह चाहे उनकी कविता हो अथवा उनके उपन्यास, प्रमुख रूप से आज़ाद भारत से रहा है। आज़ादी के बाद के चार दशकों से भी अधिक समय का सामाजिक राजनैतिक यथार्थ अपने पूरे अन्तर्विरोधों व जटिलाओं के साथ इनकी रचनाओं में उपस्थित रहा है। आजादी के बाद का यथार्थ भारतीय जनता के समक्ष सुफल के रूप में नहीं अपितु त्रासद के रूप में ही उभरा है। शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, ''नागार्जुन स्वयं स्वाधीनता आंदोलन के भी दृष्टा और भोक्ता रहे हैं और आजादी के बाद के उसके इस त्रासद यथार्थ के भी दृष्टा और भोक्ता। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अर्जित आदर्श और मूल्य, औपनिवेशिक गुलामी में जीती हुई देश की जनता की आँखों में टंके एक बेहतर जिंदगी और बेहतर भविष्य के वे सपने कैसे आजादी मिलने के चन्द सालों के बाद से ही टूटने-बिखरने लगे, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उसकी अगुवाई करने वाले राजनेताओं के जनता से किए गए लुभावने वायदे कैसे उन राजनेताओं की अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, सत्ता की हवस, उनके अपने वर्गीय स्वार्थों और ऐश-आराम की जिंदगी के चलते झूठ और फरेब, छल और छद्म, पाखण्ड और बेईमानी में बदल गए, पैनी दृष्टि वाले, परिपक्व राजनीतिक समझ और गहरी और अटूट जनपक्षधरता वाले नागार्जुन के सजग रचनाकार ने इस सारे अधः पतन, विसंगति और उसकी विडम्बनाओं को नजदीक से जाना परखा और समझा है।''[40] नागार्जुन की लेखन सामग्री अत्यंत विपुल है। अपने रचना-संसार में नागार्जुन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आधार बनाकर रचना की है। ऐसा लगता है कि इन्होंने जनमानस को सूक्ष्मता से देखा है। जनसाधारण के जीवन के दुख, उत्तेजना, घृणा, क्रोध,कमजोरियाँ, शोषण इत्यादि के साथ ही उनकी खुशियाँ, प्रेम, राग, सौन्दर्य, वात्सल्य को भी इन्होंने आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त किसान जीवन से भी ये बराबर जुड़े रहे हैं। किसानों के जीवन से जुड़ी कविताएं अप्रतिम हैं। उनका सौन्दर्य और सरलता मन मोह लेते हैं। राजनीतिक कविताएं विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों से जुड़ी हुई हैं और पाठक के मस्तिष्क को झकझोर देती हैं। इनकी कविताओं विषय वैविध्य प्रचुरता से दिखाई देता है। नागार्जुन हिंदी के साथ-साथ संस्कृत, बांग्ला और मैथिली भाषा के भी विद्वान थे इसलिए भाषागत वैविध्य भी इनके लेखन में उभरकर आता है। मुक्तछंद के साथ ही छंदबद्ध कविता करने के कारण शिल्प की दृष्टि से भी कविताएं विशिष्ट व सुंदर बन जाती हैं। विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करने व उससे मिलने वाले अनेक अनुभवों की वजह से रचना के मूड व शिल्प में विविधता दिखाई देती है। कहा जा सकता है कि आजादी के बाद का जीवन, चाहे वह शहरी हो अथवा ग्रामीण, राजनीतिक हो या सामाजिक नागार्जुन के लेखन में अपने सम्पूर्ण रूप में उभरकर पाठक को अचंभित कर देता है। नागार्जुन के साहित्य के विषय में इतना तो बेझिझक कहा जा सकता है कि जब तक समाज में विषमता विद्यमान है तब तक नागार्जुन का साहित्य प्रासंगिक बना रहेगा।

संदर्भ सूची

1. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 16-17
2. वही, पृ. 17
3. 'मनुष्य हूँ', (कविता) 1946 में रचित, नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं-2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ.44
4. 'नई पौध', (कविता) 1948 में रचित, नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं-2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ.61
5. कवि परम्पराः तुलसी से त्रिलोचन, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 149
6. वही, पृ. 150
7. टेलीविजनः साहित्य और सामाजिक चेतना, डॉ अमरनाथ अमर, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ. 87
8. वही, पृ. 83
9. नागार्जुन की कविता, अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. 29
10. वही, पृ. 29
11. 'सिंदूर तिलकित भाल' (कविता) 1943 में रचित, नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं-2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. 30-31
12. 'यह दंतुरित मुस्कान' (कविता) 1943 में रचित, नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं-2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. 32
13. लेख- प्रकृति की यायावरी आत्मीयता का कवि-नागार्जुन, निर्मला जैन, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्र- सं- 2013, पृ.29
14. वही, पृ.30
15. लेख- संवेदना के अवतार थे कवि नागार्जुन, प्रो. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 50-51
16. वही, पृ. 51
17. नागार्जुन के काव्य में जनचेतना, डॉ. सुभाष क्षीरसागर, शुभम् पब्लिकेशन, कानपुर, 2011, पृ. 180
18. 'मन करता है', प्रतिनिधि कविताएं (नागार्जुन), सं. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ. 91
19. लेख- नागार्जुन की कविता, प्रो.अरुण कमल, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्र- सं- 2013, पृ.37
20. वही, पृ. 37-38
21. नागार्जुन की कविता, अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. 29
22. 'जनकवि ', (कविता) 1947 में रचित, नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएं-2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. 46
23. लेख- जनकवि नागार्जुन – प्रो. खगेन्द्र ठाकुर, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 48
24. लेख- जनकवि बाबा नागार्जुन की काव्यभाषा, लक्ष्मण श्रीरंग राऊत, नागार्जुन और प्रगतिशील साहित्य, संपादक- प्रो माधव सोनटक्के और डॉ. भारती गोरे, स्वराज प्रकाशन, 2011, नई दिल्ली, पृ. 221
25. नागार्जुन के काव्य में जनचेतना, सुभाष क्षीरसागर, शुभम् पब्लिकेशन, कानपुर, 2011, पृ. 282-283
26. लेख- नागार्जुन की कविता, प्रो. अरुण कमल, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 38
27. नागार्जुन के काव्य में जनचेतना- सुभाष क्षीरसागर, शुभम् पब्लिकेशन, कानपुर, 2011, पृ. 258-259
28. आलोचना, 6, जनवरी/जून 1981, पृ. 27
29. टेलीविजनः साहित्य और सामाजिक चेतना, डॉ अमरनाथ अमर, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ. 83
30. 'पसेनाक गुण-धर्म',(कविता) पत्रहीन नग्न गाछ, नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1981, पृ. 24
31. टेलीविजनः साहित्य और सामाजिक चेतना, डॉ अमरनाथ अमर, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ.87
32. 'घटकवाद की उठा-पटक है' (कविता), 'तुमने कहा था' नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980 , पृ. 70-71
33. लेख- नागार्जुन की कविता, प्रो. अरुण कमल, नागार्जुन और समकालीन विमर्श- संपादक रमा, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 38
34. 'शैलेन्द्र के प्रति' (कविता), 'तुमने कहा था' नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980 , पृ.33
35. 'महाप्रभु जान्सन (ख)' (कविता), 'तुमने कहा था' नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980 , पृ.37
36. कवि परम्पराः तुलसी से त्रिलोचन, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 150
37. मेरे साक्षात्कार- नागार्जुन, किताबघर प्रकाशन, 1994, पृ. 132
38. वही, पृ. 21
39. कथाकार नागार्जुन, डॉ. जगन्नाथ पंडित, नेहा पब्लिशर्स, दिल्ली, 2011, प्राक्कथन से उद्धृत
40. वही, (भूमिका- शिवकुमार मिश्र) पृ. 2